

अण्णा हजारे आंदोलन (अहा) और सिविल सोसाइटी

शिव नारायण सिंह अनिवेद

सामयिक

“आत्म शासन का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र होने के लिए निरंतर प्रयास, चाहे वह विदेशी सरकार हो या देशी. यदि जनता जीवन के हर पहलू पर सरकार का मुंह जोहती है तो ऐसी देशी सरकार भी दयनीय कहलाएगी....सच्चा स्वराज्य चंद लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता है तो सभी लोगों के द्वारा उसका प्रतिरोध करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जाता है. दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर नियंत्रण और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है...इसका अर्थ है. ..हर ग्रामवासी में यह बोध कि वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है.”

—महात्मा गांधी

पूरे विश्व में सन 2011 सरकारों के विरुद्ध प्रतिरोध-आंदोलनों का वर्ष साबित हो रहा है. पहले अरब देश, मैड्रिड, एथेंस, इजराइल, लंदन और अब भारत. चौंकाने वाली बात यह है कि ये प्रतिरोध आंदोलन गरीब-दबे-कुचले नागरिकों द्वारा नहीं चलाए जा रहे, बल्कि भूमंडलीकरण से लाभान्वित शहरी मध्यवर्ग द्वारा इनका संचालन हो रहा है. इंटरनेट, फेसबुक, ट्विटर, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, एसएमएस तथा ईवेंट मैनेजमेंट का पूरा प्रयोग हो रहा है. अमेरिकी चिंतक थामस फ्रिडमैन ने इसे ‘आक्रोश का भूमंडलीकरण’ करार दिया है. इस परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि अण्णा टीम ने बड़ी सफाई से शेष भारतीय समाज से अलग अपने-

आपको ‘सिविल सोसाइटी’ घोषित कर रखा है. उन्होंने अपने आंदोलन को ‘भारतीय समाज’ (इंडियन सोसाइटी) का आंदोलन क्यों नहीं कहा? इस प्रश्न के उत्तर में इस आंदोलन का रहस्य छिपा है. इस आंदोलन में देश का सबसे गरीब-कमजोर तबका, जो 83 करोड़ है और जिसकी आमदनी मात्र 20 रुपये रोजाना है, वह कहां है? क्या अण्णा हजारे आंदोलन (अहा) शहरी मध्यवर्ग द्वारा पिछले बीस वर्षों में आर्थिक सत्ता हासिल करने के पश्चात् अब राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का आंदोलन है?

लोकपाल विमर्श में ‘सिविल सोसाइटी’ शब्द के प्रयोग के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इसका प्रयोग सबसे पहले इतालवी मार्क्सवादी चिंतक अंतानियो ग्रांशी द्वारा राष्ट्र-राज्य को विश्लेषित करने के संदर्भ में किया गया था. उन्होंने राजनीतिक समाज (पोलिटिकल सोसाइटी) के बरक्स सिविल सोसाइटी का प्रयोग किया था. उनके अनुसार विभिन्न वर्गों में सत्ता-संघर्ष पहले सिविल सोसाइटी के भीतर होता है. जो सामाजिक वर्ग सिविल सोसाइटी में वर्चस्व स्थापित करता है वही राजनीतिक समाज की अगुवाई करता है. यानी राष्ट्र-राज्य की शक्ति का संचालन उसी वर्ग के हाथों में होता है जो पहले सिविल सोसाइटी में नेतृत्व हासिल कर पाता है. ग्रांशी के अनुसार सिविल सोसाइटी राज्य उपकरणों तथा उत्पादन में लगी शक्तियों के अलावा शेष सभी व्यक्तिगत संगठनों का समूह है. राष्ट्र-राज्य के वर्चस्व हेतु जहां सामरिक-राजनीतिक शक्तियों द्वारा राज्य, शासित समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है वहीं सिविल सोसाइटी बृहत्तर समाज में राष्ट्र-राज्य के शासन के लिए

सहमति का माहौल बनाती है.

पश्चिमी समाज में आधुनिक युग में हुए परिवर्तनों के द्वारा समाज का पूरा सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक ताना-बाना नया बना. समाज का प्रभावशाली वर्ग, सिविल सोसाइटी पहले स्थापित हुआ, फिर दो सौ वर्षों के तमाम प्रयोगों के पश्चात् अपने अनुकूल राष्ट्र-राज्य का स्वरूप सिविल सोसाइटी ने तय किया. सिविल सोसाइटी में ही राजनीतिक सत्ता किसके हाथ में हो, इसका निर्णय होता है. इसीलिए ग्रांशी के अनुसार पश्चिमी समाज में सिविल सोसाइटी राष्ट्र-राज्य के लिए ‘किले’ का काम करती है. इसके बदले में राष्ट्र-राज्य सिविल सोसाइटी के लिए ‘ओवरसियर’ का काम करता है. कार्ल मार्क्स ने इसी वजह से राष्ट्र-राज्य को बुर्जुआ समाज की ‘अधिशासी समिति’ करार दिया था.

राष्ट्र-राज्य तथा सिविल सोसाइटी के अंतर्संबंधों की इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखने पर हम पाते हैं कि भारत का अनुभव पूर्णतया विपरीत है. 12 अगस्त 1765 से शुरू हुए औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय सामंती समाज आधुनिकीकरण के मौलिक सामाजिक परिवर्तनों के दौर से नहीं गुजर पाया. समाज वहीं रुक गया जहां वह मध्य युग में था पर राष्ट्र-राज्य आधुनिक हो गया. ब्रिटिश राज्य को भारतीय समाज के मौलिक रूपांतरण से कोई लेना-देना नहीं था. ब्रिटिश-शासकों ने अपने आर्थिक शोषण हेतु यत्र-तत्र आर्थिक-तकनीकी परिवर्तन किए. विडंबना यह है कि उन्होंने अपने यहां हुए मौलिक सामाजिक रूपांतरण को भारत में अंजाम नहीं होने दिया. अतएव भारतीय राष्ट्र-राज्य भारतीय सिविल सोसाइटी के भीतर से

नहीं जन्मा। यही विडंबना हमें आज तक घेरे हुए है। औपनिवेशीकरण के दौर में शासकों की शासित समाज के प्रति कोई सामाजिक-नैतिक जिम्मेदारी नहीं थी। भारतीय समाज में व्याप्त वर्तमान भ्रष्टाचार की जड़ें इसी दौरान पनपीं। जिस शासन का मूल मंत्र ही लूट था, वहां भ्रष्टाचार का बोलबाला होना ही था। इस ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वतंत्रता-संघर्ष कर रहे राजनीतिक नेताओं ने सीधे जनता के समर्थन के बल पर विजय हासिल की। उस समय भारत में सिविल सोसाइटी नगण्य थी।

दो सौ वर्षों की गुलामी के बाद स्वतंत्रता के वक्त भारत आर्थिक रूप से जर्जर हो चुका था। ब्रिटिश समाजशास्त्री हामजा अलवी ने सही कहा है कि उस समय भारत में 'अतिविकसित राज्य' तथा 'अल्पविकसित समाज' की स्थिति थी। नवोदित राष्ट्र-राज्य ने औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, गरीबी-उन्मूलन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा संस्कृति इत्यादि के क्षेत्रों में निवेश किया। दो सौ वर्षों की गुलामी के कारण जर्जर हुए अल्पविकसित भारतीय समाज के विकास हेतु आजादी के प्रथम चार दशकों में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति के आधार पर पब्लिक सेक्टर तथा प्राइवेट सेक्टर दोनों में तेजी से औद्योगीकरण की प्रक्रिया का सहारा लिया गया। उसके पश्चात प्राइवेट सेक्टर को विशेष सुविधाएं देते हुए पिछले दो दशकों में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां अपनाई गईं। भूमंडीकरण-उदारीकरण-निजीकरण के इन दो दशकों ने भारत में विशाल शहरी मध्यवर्ग को जन्म दिया, जिसे आज हम 'सिविल सोसाइटी' के नाम से पुकार रहे हैं। इस लेख की शुरुआत में स्पष्ट कर चुका हूं कि विकसित पूंजीवादी राष्ट्रों में पहले सिविल सोसाइटी का विकास हुआ फिर सिविल सोसाइटी ने अपने अनुकूल राष्ट्र-राज्य चुना। भारत में राष्ट्र-राज्य की आर्थिक नीतियों के तहत सिविल सोसाइटी का विकास हुआ। यही ऐतिहासिक द्वंद्व भारतीय राज्य तथा 'सिविल सोसाइटी' के बीच चल रहे वर्तमान संघर्ष के मूल में है। भारतीय राज्य आम जनता द्वारा प्रजातांत्रिक चुनाव

प्रणाली में सीधे चुने जाने की वैधता पर जोर दे रहा है, जबकि सिविल सोसाइटी भ्रष्टाचार के मुद्दे पर व्यापक जनसमर्थन या 'पब्लिक ओपिनियन' का दावा कर रही है।

दो सौ वर्षों की औपनिवेशिक लूट और भ्रष्टाचार की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता के पश्चात् महात्मा गांधी तथा स्वतंत्रता संग्राम की नैतिकता ने शुरुआती दौर में भ्रष्टाचार पर लगाम लगाए रखी। लेकिन जैसे-तैसे वक्त गुजरता गया भ्रष्टाचार सीमाएं तोड़ता गया। माना यह गया कि लाइसेंस-परमिट राज भ्रष्टाचार का मूल कारण था। लिहाजा 90 के दशक में नवउदारवादी भूमंडीकरण की नीतियों को अपनाया गया। लेकिन हर्षद मेहता से लेकर सत्यम घोटाला, 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला और राष्ट्रमंडल खेल घोटाला ने नवउदारवादी नीतियों का भी पर्दाफाश कर दिया। इन घोटालों में जेल गए बड़े-बड़े उद्योगपतियों के उदाहरणों से साबित हो गया है कि उदारीकृत भारत में कार्पोरेट जगत भ्रष्टाचार का जनक है।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध शहरी मध्यवर्ग में व्याप्त आक्रोश को अण्णा हजारे आंदोलन ने मंच प्रदान किया है। यह वह पीढ़ी है जो अपनी मोटी तनखाहों से सरकार को टैक्स देती है तो सरकार से मांग भी करती है कि आपने समाज के लिए क्या किया! अण्णा हजारे आंदोलन पिछले 20 वर्षों में विकसित हुए 'उभरते भारत' का सत्ता पर भ्रष्टाचार मिटाने का दबाव है। 'उभरता भारत', जिसे नया मध्यवर्ग या सिविल सोसाइटी कहा जा रहा है। पिछले 15-20 वर्षों की देन है तथा मूलतः प्राइवेट सेक्टर का प्रतिनिधित्व करता है। 20 हजार से एक लाख की मासिक तनखाह पाने वाले इस मध्यवर्ग की संख्या जहां 1996 में मात्र ढाई करोड़ थी वह अब 16 करोड़ हो चुकी है तथा 2015 तक लगभग 30 करोड़ हो जाएगी। यह नया मध्यवर्ग उदारीकरण की नीतियों से विकसित हुआ है। यह पुराने मध्यवर्ग की तरह राज्य पर निर्भर नहीं है। ऐसे में यह राज्य पर अपने पक्ष में बदलने का दबाव डाल रहा है कि भारतीय राज्य-सत्ता अब हम चलाएंगे, अनपढ़-गंवार

('अहा' के शब्द) नहीं। अण्णा हजारे के नेतृत्व में चल रहा यह आंदोलन टीवी कैमरों के सहयोग से अपना जोरदार शक्ति-प्रदर्शन कर रहा है। उसे भरोसा है कि जैसे-जैसे मध्यवर्ग का फैलाव होगा, उसको भी 'वोट बैंक' के रूप में कोई राजनीतिक दल नकार नहीं पाएगा।

अण्णा की टीम जहां तक भ्रष्टाचार उन्मूलन की बात करती है वह पूर्णतया उचित है, लेकिन चुने हुए जनप्रतिनिधियों को जनसमर्थन के नाम पर पूरी तरह नकार देना कहां तक लोकतांत्रिक कहलाएगा। अतः अगर अरुंधति राय अण्णा आंदोलन पर कार्पोरेट जगत के हितों में राज्य को बदलने का आरोप लगाती हैं, तो हमें इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार मात्र एक कानून लाने से नहीं मिटने वाला है। पूरे समाज के मौलिक आधुनिक रूपांतरण तथा राष्ट्र-राज्य के योग्यता तथा ईमानदारी पर आधारित होने से ही धीरे-धीरे स्वच्छ सुशासन की तरफ देश बढ़ पाएगा। लोकपाल के लिए आंदोलन एक आवश्यक प्रथम कदम है, लेकिन मंजिल बहुत दूर है। जब तक समाज के हर वर्ग में ईमानदार व्यक्ति को स्वीकार तथा सम्मानित नहीं किया जाएगा तब तक हम लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाएंगे। साथ ही सदियों से दबे-कुचले वर्गों को संसद-विधायिकाओं, सरकारी सेवाओं में आरक्षण स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य ने ही प्रदान किया। लगभग 64 वर्षों के आर्थिक विकास के पश्चात पनपे कार्पोरेट जगत ने दबे-कुचले पिछड़े वर्गों के लिए आज तक क्या किया है? व्यापक जनसमर्थन का दावा करने से पहले 'अहा' को इन प्रश्नों का भी उत्तर देना आवश्यक होगा।

अण्णा हजारे आंदोलनकारियों का कार्पोरेट जगत, जो कि भ्रष्टाचार का स्रोत है, के विरुद्ध आवाज न उठाना भी उनकी सोच का परिचायक है। बीस वर्षों की उदारीकरण की नीतियों से फले-फूले निजी सेक्टर तथा गैरसरकारी संगठनों में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ भी आवाज उठाना आवश्यक है। शहरी मध्यवर्ग अपनी आर्थिक शक्ति तथा बढ़ती संख्या के बल पर राज्य-व्यवस्था को अपने अनुसार तो

चलाना चाहता है लेकिन उद्योग-व्यापार जगत में फैले भ्रष्टाचार तथा विषमता पर चुप क्यों हैं? उनके द्वारा राजनीतिज्ञों के पुतले तो जलाए गए लेकिन भ्रष्टाचार में जेल गए उद्योगपतियों के खिलाफ आवाज क्यों नहीं उठाई गई? आमूल-चूल सामाजिक परिवर्तन ऐसे नहीं होते. कापेरिट जगत के नुमाइंदे रिश्वत देना बंद कर दें तो व्यवस्था अपने आप स्वच्छ हो जाएगी. हर ईमानदार अधिकारी जानता है कि उसके ऊपर सबसे ज्यादा दबाव भ्रष्ट उद्योगपति-व्यापारी वर्ग डालता है, माध्यम भले कोई और हो.

भ्रष्टाचार-मुक्त समाज और व्यवस्था के संदर्भ में मेरा मानना है कि ईमानदार अधिकारी तथा नागरिक के लिए व्यवस्था की यात्रा अंधेरी सुरंग की यात्रा है. अगर वह कमजोर नैतिकता तथा आत्मबल का होगा तो कुछ दूर चल कर टूट जाएगा. अंधेरी सुरंग से सफल और स्वस्थ निकल पाने के लिए नैतिकता तथा आत्मबल की आवश्यकता होती है. इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि जिसने भी काफ़का का उपन्यास 'ट्रायल' पढ़ा है उसको पता होगा कि व्यवस्था किस तरह एक व्यक्ति को चूर-चूर कर देती है. क्या किसी कानून के सहारे आत्मबल पाया जा सकता है? लोकपाल कानून में भ्रष्टाचारियों के खिलाफ तो प्रावधान हैं, लेकिन जब तक ईमानदार अधिकारियों तथा नागरिकों के लिए व्यवस्था और समाज में निष्पक्ष और निर्भय रहकर काम करने का माहौल नहीं बनेगा, भ्रष्टाचार मुक्त समाज की कल्पना कोरी कल्पना ही रह जाएगी. जंतर-मंतर तथा रामलीला मैदान में जुटे उच्च वर्ग और सेलेब्रिटीज में से कितनों ने व्यवस्था की अंधेरी सुरंग का अनुभव किया है? महात्मा गांधी ने सच ही कहा है कि सच्चा स्वराज्य वही होगा जिसमें हर ग्रामवासी को विश्वास हो कि वह अपने भाग्य का निर्माता है. अण्णा हजारे आंदोलन में

मधुर नज़्मी की गज़ल

अब भी माथे पे' एहसास के दाग कुछ बदगुमानी के हैं—
आज के आवरण-पृष्ठ पर घाव कल की कहानी के हैं.

मैं उलझ जाऊंगा छूटकर, मैं बिखर जाऊंगा टूट कर—
क्या करूं सर उठाए हुए मस्तए ज़िंदगानी के हैं.

देखते-देखते बन गए आईने मेरे हालात के—
जो मेरी पस्त दीवार पर कुछ निशानात पानी के हैं.

है उदासी मेरे चार सूर है मुझसे खुशियों की बू—
मेरे आंगन में यूं तो खिले फूल भी रातरानी के हैं.

मैंने जो चाहा वो मिल गया शुक्रिया, शुक्रिया—
मेरी उम्मीद के पेड़ में फल, आपकी मेहरबानी के हैं.

है तबाही की जानिब चमन हो गए चाक फूलों के तन—
ज़र्रे-ज़र्रे ये मंज़र लिए आपकी पासबानी के हैं.

संपर्क : 'काव्यमुखी साहित्य-अकादमी'

गोहना मुहम्मदाबाद, ज़िला मऊ उ. प्र.

मोबाइल : 09369973494

ग्रामवासियों की अनुपस्थिति भी आंदोलन की 'सिविल सोसाइटी' तक सीमित अपील दर्शाती है. इस लेख के आरंभ में दिए गए महात्मा गांधी के विचारों को गंभीरता से क्रियान्वित करें तो 'गांधी टोपी' के साथ-साथ 'गांधी के विचारों' को भी अण्णा हजारे आंदोलन कम से कम सिविल सोसाइटी के लोगों तक तो प्रचारित-प्रसारित कर ही जाएगा. प्रतीकों के साथ-साथ विचार ज्यादा प्रभावकारी साबित होंगे. यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज और व्यवस्था (चाहे सरकारी हो या गैर-सरकारी) में लोग अपने सिद्धांतों तथा मूल्यों से बहुत जल्दी समझौता कर लेते हैं, क्योंकि ईमानदारी तथा स्पष्टवादिता की स्वीकृति अभी हमारे समाज और व्यवस्था में नहीं है. जब तक पूरे समाज में ईमानदारी तथा स्पष्टवादिता सामाजिक मूल्य के रूप में स्थापित और सम्मानित नहीं हो जाते, भ्रष्टाचार-मुक्त समाज तथा व्यवस्था की मंजिल अभी दूर है.

हां अभी तक इस आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि है सामाजिक-वैचारिक मंथन का शुभारंभ. इसी से भविष्य में स्वच्छ-सुशासित सामाजिक न्याय तथा समानता पर आधारित समाज की तरफ हम बढ़ पाएंगे. कुछ भी हो इस विमर्श ने राजनीतिक जगत ही नहीं बौद्धिक जगत में भी विचारों की हलचल तो पैदा कर ही दी है. इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि आजादी के 64 सालों बाद भारत में सिविल सोसाइटी सही अर्थों में सक्रिय रूप में हमारे सामने है. अरुंधति राय जैसे भारतीय राज्य के घोर विरोधी की अण्णा आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में राज्य की तरफदारी करना इस बौद्धिक हलचल का ज्वलंत उदाहरण है. अंत में मेरा निष्कर्ष है कि 2011 का भारत 'ग्राम्शीय विश्लेषण' पर खरा उतरता साबित हो रहा है. शुरुआती कशमकश के पश्चात् सिविल सोसाइटी तथा राज्य-राज्य के बीच सहमति इस बात का प्रमाण है. पूरी भारतीय संसद द्वारा एकमत से सिविल सोसाइटी के पक्ष में पारित प्रस्ताव दर्शाता है कि वह दिन दूर नहीं जब पश्चिम की तरह भारत में भी सिविल सोसाइटी राष्ट्र-राज्य के लिए 'किले' का काम करे और राष्ट्र-राज्य सिविल सोसाइटी के लिए ओवरसियर का. इसी के साथ इस बात पर भी मैं जोर देना चाहूंगा कि अगर पूरे भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व न कर मात्र सिविल सोसाइटी तक अण्णा हजारे आंदोलन (अहा) सीमित रह गया, तो खतरा है कि कहीं यह आंदोलन सामाजिक आंदोलनों का टूट्टी-टूट्टी संस्करण न साबित हो जाए.

यह लेख 'काउंटर-इवालुशनरी' शीर्षक से 5

अगस्त 2011 के हिंदुस्तान टाइम्स में

प्रकाशित हो चुका है.)

email : sheoanived@gmail.com

website : www.sheoanived.com

□ निष्प